एक सबक़ इस्लाम से

सफ़वतुल उलमा मौलाना सैय्यद क़ल्बे आबिद साहिब क़िब्ला ताबा सराह

पिछले शुमारे से आगे

अद्ल (न्याय) का अर्थ है कि ईश्वर वही बात करता है जो न्याय के अनुरूप हो। वह किसी पर जुल्म और ज़ियादती नहीं करता। यह सम्भव नहीं है कि अच्छे कार्य करने वालों और इबादत गुज़ारों अर्थात् उपासना करने वालों को नर्क में डाल दे और बुरे कार्य करने वालों को स्वर्ग में पहुँचा दे ईश्वर का न्याय भी, दूसरी सिफाते सुबूतिया अर्थात वह गुण जो ईश्वर में पाये जाते हैं, की तरह है। यद्यपि इसका उसूले दीन में यानी धर्म के मूल सिद्धान्तों में अलग से इसलिए वर्णन किया जाता है कि कुछ लोगों ने ईश्वर की इस विशेषता से इन्कार किया है। वह कहते हैं कि, ईश्वर के लिए इसका कोई प्रश्न ही नहीं। क्योंकि दुनिया में जो कुछ है वह ईश्वर का पैदा किया हुआ है और उसकी ही मिलकियत या स्वामित्व में है। अपनी मिलकियत में अर्थात् अपने स्वामित्व में मालिक को हक़ होता है कि जिस प्रकार चाहे वह व्यवहार करे। मालिक एक ही कपड़े के एक टुकड़े की टोपी और दूसरे का मोजा बना सकता है। किसी को हक़ नहीं कि यह कहे, कि एक को पस्ती और दूसरे को बुलन्दी क्यों दी? इस प्रकार अच्छे भी ईश्वर के बन्दे और बुरे भी। उसका अधिकार है कि चाहे तो अच्छे लोगों को नर्क में झोंक दे और बुरे लोगों को जन्नत में ऊँची और अच्छी मन्ज़िल में स्थान दे। उससे किसी को पूछताछ का अधिकार नहीं। यह ठीक है कि प्रत्येक वस्तु ईश्वर की मिलकियत या स्वामित्व में है अर्थात् उसकी सम्पत्ति है। और यह भी ठीक है कि ईश्वर से ऊँचा कोई नहीं कि उस से कोई पूछताछ करे, लेकिन चूँकि जुल्म अपने आप में बुरी चीज़ है और ईश्वर की ज़ात प्रत्येक बुराई से पाक और स्वच्छ है। उसकी पवित्रता की गवाही सृष्टि की प्रत्येक वस्तु देती है। अतः ईश्वर की ज़ात पर जुल्म का, अन्याय का धब्बा भी नहीं आ सकता है। मोज़े और टोपी का उदाहरण ठीक नहीं है, क्योंकि कपड़ा न कल्पना रखता है न अधिकार। न उसके यहाँ आज्ञापालन का विचार है और न अवज्ञा का। अतः मालिक को पूरे अधिकार प्राप्त हैं। लेकिन यदि एक व्यक्ति के दो गुलाम हों, एक हर तरह से हर बात मानने वाला और आज्ञाकारी हो और दूसरा मालिक से ज़बान लड़ाए और उसका काम न करे और मालिक पहले को इन्आम या पुरस्कार देने के बजाए सज़ा दे और दूसरे को दण्ड देने के बजाए पुरस्कार दे, तो मालिक का यह कार्य नापसन्दीदा यानी अरूचिकर कहा जायगा।

आश्चर्य होता है कि ''कुर्आने मजीद'' में ईश्वर की न्यायता (अदालत) के पक्ष में इतने सुस्पष्ट बयान के बाद, यह कैसे माना जाता है।

क्योंकि कहीं इरशाद (वर्णित) हैं, ''ईश्वर बन्दों पर ज़ुल्म नहीं करता।'' कहीं वर्णित है या कथित है कि, ''ज़ालिमों पर ईश्वर की लानत (अभिशाप) है।'' जो दूसरों पर ज़ुल्म की वजह से लानत करे वह ख़ुद कैसे ज़ुल्म कर सकता है। कहींयह वर्णित या कथित है कि ''ईश्वर स्वयं, फरिश्ते और तमाम ज्ञान वाले (जिनमें सब पैग़म्बर आ गये) इसके गवाह हैं कि वह एक है और न्याय और इंसाफ पर क़ायम है। कुर्आन एलान कर रहा है कि, ''ईश्वर की बात सच्चाई और न्याय के लिहाज़ से पूरी है।''

मुसलमानों को हुक्म दिया जा रहा है कि किसी क़ौम की शत्रुता (दुश्मनी) तुम्हें इस जुर्म (अपराध) में मुब्तला यानी ग्रस्त न करें कि तुम न्याय से न पेश आओ। यही बात तक़वे अर्थात् ईश्वरीय भय से सन्निकट है। कुर्आन कहता है कि, ''सभी पैग़म्बरों की ग़रज़े बेअ्सत अर्थात् उन्हें भेजे जाने का उद्देश्य न्याय की स्थापना है। हमने अपने पैग़म्बरों को खुली हुई सच्चाई की दलीलें (तर्कनायें) देकर भेजा। उनके साथ किताब और मीज़ाने अमल (आचरण की तुला) नाज़िल की, अवतरित की ताकि लोग न्याय के साथ क़याम (स्थापना) करें।''

अब आप बताइये कि इन सब विधियों के प्रकाश में कैसे सम्भव है कि ईश्वर को ''आदिल'' यअ्नी न्याय करने वाला न माना जाये।

ईश्वर को आदिल या न्याय करने वाला, न मानने का फल यह निकलता है कि कुर्आन में जन्नत–जहन्नम, अज़ाब–सवाब यअ्नी स्वर्ग–नर्क, यातना–पुण्य आदि के बारे में जितनी आयतें हैं सब निरर्थक हो जायेंगी। यह इसी लिए तो है कि इबादत व इताअत आर्थात् पूजन और आज्ञापालन का शौक़ पैदा हो और नाफ़रमानी (अवज्ञा) से बचा जाये। और जब व्यक्ति यह विचार करे कि सम्भव है कि सब कुछ करने के बाद भी नर्क में चला जाऊँ और प्रत्येक बुराई करने के बाद भी जन्नत मिल जाये तो किसी को क्या पड़ी है कि कष्ट झेले और बेकार का सरदर्द मोल ले।

कुछ लोग ईश्वर की न्यायता के दर्जे में इतना हद से बढ़ गये (मुअ्तज़िला हो गये) कि उन्होंने ईश्वर की ओरसे क़यामत में बख़्शे जाने और शिफाअत यअ्नी अनुशंसा आदि सबका इन्कार कर दिया क्योंकि उनके नज़दीक बड़े गुनाह का आवश्यक फल यह है कि सज़ा मिले। यह कहते हैं जिस प्रकार फरमाँबरदार (अज्ञाकारी) को जज़ा या फल न देना क़ानून के ख़िलाफ है उसी तरह ना फरमान यअ्नी कहना न मानने वाले को, उसका फल या सज़ा न देना न्याय के ख़िलाफ है। ईश्वर ने कुर्आन में और रसूल ने हदीसों में स्पष्ट किया है कि इताअत करोगे (कहना मानोगे) तो जज़ा या प्रतिदान मिलेगा और नाफरमानी (अवज्ञा) करोगे तो दण्ड मिलेगा। किसी के लिए इन्आम के इक़रार को ''वअ्दा'' और दण्ड के एलान को ''वईद'' (चेतावनी) कहते हैं। ईश्वर और उसके पैग़म्बर के कलाम (कथन) में 'वाअ्दे' भी हैं और 'वईद' भी। और पैग़म्बरों का गुण 'बशीर' (सुसंवाद देने वाला) और 'नज़ीर' (डराने वाला) भी है। तो दोनों बातों को पूरा होना चाहिए।

(जारी)